International Journal of Hindi Research
ISSN: 2455-2232
Impact Factor: RJIF 5.22
www.hindijournal.com
Volume 4; Issue 5; September 2018; Page No. 48-52

बौद्ध एवं जैन संघ में भिक्षुणियों की सामाजिक स्थिति

डॉ0 जया श्रीवास्तव
Department of Ancient Indian History, Shashi Bhushan Degree College, Lucknow, Uttar Pradesh, India

प्रस्तावना

जैन एवं बौद्ध संघ दोनों में ही चार भाग विभाजित थे – 1. भिक्षु एवं साधु 2. भिक्षुणी एवं साध्वी 3. उपासक, 4. उपासिकाएं। इन चारों भागों में भिक्षु–भिक्षुणी एवं साधु–साध्वी का महत्वपूर्ण स्थान था। समाज में भिक्षु एवं साधु की अपेक्षा भिक्षुणियों एवं साध्वी का निम्न स्तर था। संघ में भिक्षुणियों एवं साध्वियों की तुलना में भिक्षु को अधिक स्वतंत्रता प्राप्त थी। भिक्षुणियों एवं साध्वियों को अपनी शील सुरक्षा का भय बना रहता था जिसे दूर करने के लिए संघ में उनकी सुरक्षा का ध्यान रखा जाता था। भिक्षुणियां एवं साध्वियां भिक्षु एवं साधु को उपदेश नहीं दे सकती थी। भिक्षुणियों एवं साध्वियों की स्थिति निम्न थी। समाज में भी उन्हें उच्च स्थान प्राप्त नहीं था।

बौद्ध संघ में भिक्षुणियों की सामाजिक स्थिति

बौद्ध ग्रन्थों के वर्णन से हमें ज्ञात होता है कि प्रारम्भ में भगवान बुद्ध नारी जाति को भिक्षु धर्म में दीक्षा देने के विरूद्ध थे।[1] वे तो आनन्द के तर्क और अनुरोध से मान गये और संघ में भिक्षुणियों के प्रवेश की आज्ञा दे दी। उन्होंने अपने प्रिय शिष्य तथा प्रव्रज्याकांक्षिणी नारियों के अनुरोध को स्वीकार तो कर लिया पर उन्हें आन्तरिक शान्ति नहीं मिली। बौद्ध भिक्षु–संघ में नारी की विद्यमानता के भावी दुष्परिणामों से भगवान बुद्ध आशंकित हो उठे थे जो उनके इन शब्दों से व्यक्त होते हैं – हे आनन्द यदि स्त्रियों को गृहस्थ जीवन का परित्याग कर अनुमति नहीं दी गई होती तो हे आनन्द, यह विशुद्ध धर्म चिरस्थायी होता, हे आनन्द, तब यह सद्धर्म सहस्रों वर्षों तक स्थिर रहता, परन्तु हे आनन्द, अब स्त्रियों को वह अधिकार प्रदान कर दिया गया, अतः यह विशुद्ध धर्म, आनन्द अब मात्र पांच सौ वर्षों तक स्थिर रह पायेगा।[2]

नारी को प्रव्रज्या का अधिकार प्रदान करने के विषय में न केवल भगवान बुद्ध, अपितु समस्त विश्व के सन्यासी इसके विरुद्ध थे। जिन धार्मिक संस्थाओं में वैराग्य की प्रमुखता है वहाँ स्त्री की उपस्थिति से पुरुष की आध्यात्मिक साधना में व्यवधान होने की सम्भावना की उपेक्षा नहीं की जा सकती। बुद्ध ने अनुभव किया कि बौद्ध भिक्षु–संघ में भिक्षुणियों की उपस्थिति के फलस्वरूप कतिपय भिक्षु–संघ के उच्च नैतिक आदर्शों से च्युत हो जायेंगे। अतः वे भिक्षुणी–संघ की स्थापना के विरुद्ध थे। नारी–जाति को प्रव्रज्या के अधिकार से वंचित रखने का एक प्रमुख कारण प्रतीत होता है कि पुरुष अपनी दुर्बलताओं का आरोप स्त्री के दुश्चरित्र्य पर करता रहा है अतः सन्यासी को नारी से दूर रहकर लक्ष्यसिद्धि में सफलता दिखती है। वानप्रस्थ–आश्रम में नारी को अरण्यवास की अनुमति प्रदान की गयी, परन्तु यह बौद्ध–संघ से असमान परिस्थिति के कारण सम्भव हुआ। यौवन के अवसान पर जब मनुष्य की वासनाएं प्रस्तुत होने लगती हैं तब गृहस्थ वानप्रस्थाश्रमी बनता था और पति–पत्नी साथ–साथ निवृत्तिमार्ग में अग्रसर होते थे। दूसरी ओर बौद्ध–संघ में व्यक्ति पन्द्रह वर्ष की वय में ही श्रामणेर बन जाता था। इस अपरिपक्व वय में स्त्री–सान्निध्य से व्यक्ति की दलित–वासनाओं के प्रबलवेण से प्रज्वलित होने की पूरी सम्भावनाएं रहती हैं। बौद्ध–संघ में युवा भिक्षु और युवती भिक्षुणियों की उपस्थिति से अनेक जटिल समस्याओं के उत्पन्न होने की सम्भावनाएं थीं। अतः भिक्षु–भिक्षुणी सम्बन्ध कलुषित न हों, इस विचार से यह नियम बनाया गया कि यदि कोई श्रामणेर किसी भिक्षुणी के संग सहवास करेगा, तो उसे भिक्षु–संघ से निष्काषित कर दिया जाएगा।[3] परन्तु भिक्षुणियों की उपस्थिति के कारण बौद्ध–संघ में बड़ा भ्रष्टाचार होने लगा जिससे समाज में उसकी बड़ी बदनामी हुई। स्त्रियों को सन्यास जीवन से दूर रखने की प्रवृत्ति का एक अन्य कारण यह भी था कि प्राचीन काल की पितृ–प्रधान कुटुम्ब–व्यवस्था में स्त्री का स्थान पारिवारिक सम्पत्ति के एक अंग–सदृश था। प्राचीन काल में कन्या अपने पतिकुल को प्रदान की जाती थी – 'कुलाय हि दीयते नारी'।[4] स्त्री–स्वातन्त्र्य का भी समाज में विरोध हुआ जिसकी अभिव्यक्ति– 'न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति' जैसी उक्ति में हुई। नारी के बाल्यकाल, युवावस्था यथा वार्द्धक्य में क्रमशः पिता, पति एवं पुत्र उसके संरक्षक माने गये थे। पति के प्रव्रजित हो जाने पर पुत्र नारी का संरक्षक हो जाता था। अत्यन्त उत्सुक होने पर भी याज्ञवल्क्य मुनि की पत्नियां प्रव्रजित न हो पायीं। अतः प्राचीन भारतीय सामाजिक वातावरण नारी के प्रव्रजित होने के विरुद्ध था।

धार्मिक तथा सामाजिक परम्पराओं के अतिरिक्त कतिपय व्यवहारिक समस्याओं के कारण भी भगवान बुद्ध नारी को प्रव्रज्या का अधिकार प्रदान करने के पक्ष में नहीं थे। यदि कोई नारी वन में आरक्षित रहती, तो उसे समाज–विरोधी तत्वों का शिकार बनना पड़ता। प्राचीन भारत में गुण्डों द्वारा वन में आरक्षित नारी के शीलभंग करने का उल्लेख मिलता है।[5] यदि वे एकान्त स्थान में रहतीं तो गुण्डे इस अवसर का लाभ उठाने से नहीं चूकते थे।[6] नारी को एकाकी पाकर दस्यु उनका अपहरण कर लेते थे। वान प्रस्थाश्रम में जो स्त्रियां अपने पति का साथ नहीं छोड़ती थीं, उन्हें तपोवन में पति का संरक्षण प्राप्त था, परन्तु बुद्ध को तो कठिन समस्या का सामना करना पड़ा। यदि वे स्त्रियों को भिक्षुणी धर्म में दीक्षित कर साधना हेतु वन में भेजते, तो उनके गुण्डों तथा दस्युओं के चंगुल में फंसने की सम्भावना रहती। यदि भिक्षुणियों को भिक्षुओं के साथ रहने की अनुमति प्रदान की जाती, तो उभयपक्ष के पथभ्रष्ट होने का भय बना रहता। अतः जब स्त्रियों को प्रव्रज्या ग्रहण करने का अधिकार मिल गया और वे भिक्षुणियां बनने लगीं, तब यह व्यवस्था की गयी कि न तो वे एकाकी आवास के बाहर जाए न किसी नदी की ओर, और न रात्रि में एकाकी वास करें या संघ के बाहर जाएं।[7]

धार्मिक जीवन व्यतीत करने की स्वाभाविक प्रवृत्ति के कारण वृद्धाएं भिक्षुणी बनने लगीं। कुछ नारियों ने पति के प्रव्रजित हो जाने पर अथवा असीम दुःख के कारण संसार को नश्वर मानकर शान्तिमय

धार्मिक जीवन व्यतीत करना श्रेष्ठ समझा था। अधिकांश स्त्रियों ने धर्म भीरू होने के कारण सामाजिक जीवन से त्रस्त होकर धर्म की शरण ग्रहण की थी।

पति के गृहस्थ जीवन से विरक्त हो जाने पर जिन स्त्रियों ने प्रव्रज्या ग्रहण की थी उनमें गौतमी, सुन्दरी धम्मदिन्ना, चापा, इसिदासी, सोणा शाक्य कुमारियों के नाम उल्लेखनीय हैं।[8] अपने पुत्र, पति, माता–पिता तथा भाई को मृत देखकर पटाचारा पागल हो गई तथा बुद्ध के उपदेशों से प्रभावित होकर उसने संघ में भिक्षुणी जीवन व्यतीत करने में शान्ति का अनुभव किया।[9] धम्मा को अपने पति से भिक्षुणी बनने की अनुमति प्राप्त न होने पर उसने अपने पति की मृत्यु के पश्चात् संघ में प्रवेश लिया।[10] कृशा गौतमी अपने पुत्र की मृत्यु से दुःखी होकर भगवान बुद्ध के धर्मोपदेश सुनकर प्रव्रजित हुई थी।[11] भद्रा–कुण्डल केशा ने अपने प्रेमी को लालची एवं विश्वासघाती पाकर पहाड़ से ढकेलकर हत्या कर दी तथा स्वयं सब कुछ त्यागकर बुद्ध की शरण में चली गई।[12] रोहणी, उत्तमा तथा खेमा ने भगवान बुद्ध के उपदेशों से प्रभावित होकर भिक्षुणी जीवन को अपनाया था।[13] गणिका सुमंगलमाता तथा गणिका अम्बपाली द्वारा बौद्ध संघ में भिक्षुणी जीवन व्यतीत करने का उल्लेख मिलता है। कुछ वेश्याएं यथा विमला[14] तथा अंगकासी[15] आदि ने भी बौद्ध धर्मोपदेशों को सुनकर जीवन की क्षणभंगुरता को देखते हुए प्रव्रज्या ग्रहण की थी।

भिक्षुणी जीवन अपनाने के लिए कोई जाति बन्धन सामाजिक कुल और शील का विशेष महत्व नहीं था। यह प्रायः सभी वर्ग श्रेणियों की स्त्रियां भिक्षुणी जीवन स्वीकार करने के लिए स्वतंत्र थीं।[16] खेमा, सुमना, शैला और सुमेधा आदि मगध, कोसल तथा श्रावस्ती के राजवंशों से सम्बन्धित महिलाएं थीं। प्रजापति, गौतमी, तिष्या, अभिरूपनन्दा, सुन्दरी, धीरा, मित्रा, आदि शाक्य तथा लिच्छवि गणराज्य के सामन्तों की पुत्रियां थीं। चाला, उपचाला, रोहणी, सुन्दरी, मैत्रिका, शुभा, भद्राकापिलायिनी, मुक्ता, सकुला, चन्द्रा, दन्तिका तथा सोमा आदि ब्राह्मण वंश से सम्बन्धित थीं। इनमें गृहपति तथा वैश्य एवं श्रेष्ठि वर्ग से सम्बन्धित महिलायें यथा – पूर्णा, चित्रा, श्यामा, उब्बरी, धम्मदिन्ना, भद्राकुण्डलकेशा, पटाचारा सुजाता और अनुपमा आदि थीं। इसके अतिरिक्त शुभा सुवर्णकार थी तथा चापा बहेलियों की पुत्री थीं जो भिक्षुणी संघ में सम्मानपूर्ण जीवन व्यतीत करती थीं। तत्कालीन समाज में भिक्षुणी संघ के द्वार गणिकाओं तथा वेश्याओं के लिए भी खुले थे। अभयमाता, अड्ढकासी, विमला, अम्बपाली आदि उपरि वर्ग से सम्बन्धित महिलायें थीं।[17]

बौद्ध संघ में गर्भवती गृहणियों को भी प्रव्रज्या दिये जाने का उल्लेख है।[18] स्थिति को ध्यान में रखते हुए इन महिलाओं को शिशु की शैशवावस्था तथा अपने साथ रखने तथा एक भिक्षुणी को सहयोग हेतु साथ रखने की अनुमति भी प्राप्त थी। राजगृह की श्रेष्ठि पुत्री ने मन में संसार से वैराग्य उत्पन्न होने पर माता–पिता से प्रव्रज्या की अनुमति मांगी किन्तु अनुमति न मिली। विवाहोपरान्त पति के सामने उसने अपनी यह इच्छा व्यक्त की। उसके पति ने उसे अनुमति प्रदान कर दी। प्रव्रजित हो जाने पर उसे अपने गर्भवती होने के लक्षण पता चले। भिक्षुणियों ने यह सूचना जब देवदत्त को दी तो उन्होंने उसे संघ से निष्कासन का आदेश दे दिया किन्तु उस भिक्षुणी के आग्रह पर देवदत्त ने विचार विमर्श कर यह पता लगाया कि गर्भ उसके प्रव्रजित होने के पूर्व का है या बाद का। जब यह निश्चित हो गया कि वह भिक्षुणी संघ में प्रवेश के पूर्व की गर्भवती थी तो उन्होंने उसके निष्कासन का आदेश रद्द कर दिया। शिशु–जन्म के उपरान्त विहार के निकट से कोसल राजा प्रसेनजित ने सवारी पर जाते हुए शिशु का क्रन्दन सुनकर भिक्षुणी द्वारा उसके पालन–पोषण पर विचारोपरान्त उन्होंने शिशु के पालन–पोषण का दायित्व स्वयं स्वीकार कर लिया।[19] भिक्षुणियों का संघरूप नियमों का पालन करना आवश्यक समझा जाता था।

समाज में भिक्षुणी जीवन सादा एवं शान्तिमय था। स्त्रियां अपनी धार्मिक प्रवृत्ति के कारण अथवा गृहस्थ जीवन के कष्टों एवं दुःखों से ऊबकर अथवा संसार के प्रति वैराग्य उत्पन्न होने पर भिक्षुणी जीवन व्यतीत करती थीं।

बौद्ध भिक्षुणियों को थेरी कहा जाता था। थेरी का अर्थ है – 'ज्ञानवृद्धा'। इन थेरियों ने जो आत्मकथन किये हैं, वे थेरीगाथा नाम से उपलब्ध हैं। 73 थेरीगाथाएं ही अब शेष बची हैं जिनमें उनकी सामाजिक स्थिति का परिचय मिलता है। थेरियां राजमहिषियों से लेकर वेश्याओं और अस्पृश्याओं के समाज के प्रत्येक वर्ग से आती थीं।[20]

एक अन्य विवरण से ज्ञात होता है कि मार के साथ सोमा भिक्षुणी का जो संवाद हुआ था उससे यह स्पष्ट होता है कि बुद्ध के धर्म–मार्ग में स्त्रियों का स्थान पुरुषों की बराबरी का था। मार के साथ सोमा भिक्षुणी का संवाद निम्नलिखित है –

दोपहर के समय जब सोमा भिक्षुणी श्रावस्ती के पास अन्धवन में ध्यान के लिए बैठी तो मार उसके पास जाकर बोला –

यन्तं इसीहि पत्तब्बं . . . . . तुमित्थिया।।

अर्थात् जो (निर्वाण) स्थान ऋषियों को भी मिलना असम्भव है जिसकी प्रज्ञा दो अंगुलियों में ही सीमित है (यानी चावलों के पक जाने पर दो अंगुलियों से उन्हें दबाकर देखना ही जिसका एक–मात्र बुद्धिमानी का कार्य है)।

सोमा भिक्षुणी बोली –

इत्थिभावो किं कमिरा चितम्हि सुसमाहिते।
ञाणम्हि वत्तमानम्हि सम्मा धम्मं विपस्सतो।।
यस्स नून सिया एवं इत्थाहं पुरिसो ति वा।
किञ्चि वा पन अस्मीति तं मारो वत्तुमरहति।।[21]

अर्थात् ''जिसका चित्त भली भांति सन्तुष्ट हो गया है और जिसे ज्ञान लाभ हुआ है ऐसे सम्यक् रूपेण धर्म जानने वाले व्यक्ति के लिये (निर्वाण मार्ग में) स्त्रीत्व कैसे बाधक हो सकता है, मार ये बातें उसे बताये जिसे यह अहंकार हो गया कि मैं स्त्री हूँ, मैं पुरुष हूँ, या मैं कोई हूँ।''

मार यह जान गया कि सोमा भिक्षुणी ने उसे पहचाना है, अतः वह दुःख से वहीं अन्तर्धान हो गया।[22]

भिक्षुणियों को सदैव इस बात का ध्यान रखना होता था कि कहीं उनका कार्य गृहस्थाश्रम में जीवन बिताने वाली स्त्रियों से एकदम विलक्षण तो नहीं है। इससे यह तात्पर्य निकलता है कि भिक्षुणी को संघ एवं समाज के आदर्शों का सन्तुलन रखकर जीवन यापन करना होता था। यदि भिक्षुणियाँ सामाजिक–नारियों से पूर्णतया भिन्न आचार–विचार का पालन करती थीं तो वे साधारण मनुष्यों के व्यंग एवं उपहास की पात्र होती थीं, और यदि वे भिक्षुणी–जीवन के आदर्शों की उपेक्षा कर जीवन यापन करती थीं तो लोकनिन्दा की पात्र होती थीं।

भिक्षुणियों को उनकी विद्वता के कारण समाज के कुछ व्यक्तियों द्वारा अवश्य सम्मान मिला था किन्तु कुछ लोग अवसर पाकर उनका दुरुपयोग भी करते थे। यह प्रवृत्ति उस समय और भी अधिक पाई जाती थी, जब भिक्षुणी नवयुवती एवं सुन्दरी होती थी।

इसका कारण यह था कि भिक्षुणी के साथ अनुचित कार्य करने से व्यक्ति सामाजिक या राजनीतिक दण्ड का भागी नहीं होता था। अतः एकान्त में पाकर कामुक व्यक्ति भिक्षुणियों को दूषित कर दिया करते थे। कभी–कभी समाज[23] के सम्पन्न व्यक्ति भिक्षुणी में आसक्त होकर उन्हें दूषित करने की दृष्टि से आमन्त्रित करते थे। भिक्षुणी–संघ के उदय से समाज में आंशिक रूप से व्यभिचार को भी प्रोत्साहन मिला था।

इसके अतिरिक्त भिक्षुणी से सामाजिक भ्रष्ट–नारियाँ कभी–कभी गुप्त कार्य भी कराती थीं। एक प्रोषित–पतिका स्त्री ने जार से प्राप्त गर्भ को गिरा कर बराबर घर आने वाली भिक्षुणी को पात्र में रखकर फेंकने के लिए दिया था।

इस तरह कहा जा सकता है कि जिस तरह भिक्षु संघ का सम्मान था उस तरह भिक्षुणी संघ का समाज में सम्मान नहीं था।[24]

इस प्रकार यह कह सकते हैं कि यद्यपि महात्मा बुद्ध संघ में स्त्रियों को स्थान देने के पक्ष में नहीं थे लेकिन उन्होंने संघ में स्त्रियों को स्थान दिया। संघ में भिक्षुणी समाज के प्रत्येक वर्ग से आयी। किसी भी जाति की स्त्री को भिक्षुणी संघ में स्थान दिया गया था।

जैन संघ में साध्वियों की सामाजिक स्थिति

साध्वियाँ महावीर के चतुर्विद्य संघ की एक महत्वपूर्ण अंग थीं। साध्वियों का जीवन अधिक कठोर था। उन्हें अधिक अनुशासित तथा नियंत्रित जीवन बिताना पड़ता था। उनके लिए विधान है कि उन्हें साधुओं द्वारा आरक्षित दशा में अकेले नहीं रहना चाहिए, तथा संदिग्ध चरित्र वाले लोगों के साथ निवास नहीं करना चाहिए।[25] यह कहा गया कि आचार्य, युवा साधु और वृद्धा साध्वियां तरूण साध्वियों को अपने संरक्षण में लेकर यात्रा करें। ऐसी यात्राओं में पूरी व्यूह रचना की जाती थी – सबसे आगे आचार्य एवं वृद्ध साधुगण, उनके पश्चात् युवा साधु फिर वृद्ध साध्वियां और अन्त में युवा साधु होते थे। साध्वियों की शील सुरक्षा के लिए आवश्यक होने पर साधु उन मनुष्यों की भी हिंसा कर सकता था जो उसके शील को भंग करने का प्रयास करते थे। यहाँ तक कि ऐसे अपराध प्रायश्चित योग्य भी नहीं माने गये थे। साध्वियों को कुछ अन्य परिस्थितियों में भी इसी दृष्टि से साधुओं के सानिन्ध्य में निवास करने की भी अनुमति दे दी गई थी। जैसे – साधु–साध्वियां यात्रा करते हुए किसी निर्जन गहन वन में पहुँच गये हों अथवा साध्वियों को नगर में अथवा देवालय में ठहरने के लिए अन्यत्र कोई स्थान उपलब्ध न हो रहा हो अथवा उन पर बलात्कार एवं उनके वस्त्र–पात्रादि के अपहरण की सम्भावना प्रतीत होती है इसी प्रकार विक्षिप्त चित्त अथवा अतिरोगी साधु की परिचर्या के लिए यदि कोई साधु उपलब्ध न हो तो साध्वी उसकी परिचर्या कर सकती थी। साधुओं के लिए भी सामान्यतया साध्वी का स्पर्श वर्जित था किन्तु साध्वी के कीचड़ में फँस जाने पर, नाव में चढ़ने या उतरने में कठिनाई अनुभव करने पर अथवा जब उसकी हिंसा अथवा शीलभंग के प्रयत्न किये जा रहे हों, तो ऐसी स्थिति में साधु साध्वी का स्पर्श कर उसे सुरक्षा प्रदान कर सकता था।[26]

दण्ड–व्यवस्था और संघ व्यवस्था में भी नारी की प्रवृत्ति को सम्यक् रूप से समझने का प्रयास किया है। पुरुषों के बलात्कार और अत्याचारों से पीड़ित नारी को उन्होंने दुत्कारा नहीं अपितु उसके समुद्धार का प्रयत्न किया। जैन दण्डव्यवस्था में उन साध्वियों के लिये किसी प्रकार के दण्ड की व्यवस्था नहीं की गई थी, जो बलात्कार की शिकार होकर गर्भवती हो जाती थी, अपितु उनके और उनके गर्भस्थ बालक के संरक्षण का दायित्व संघ का माना गया था। प्रसवोपरान्त बालक के बड़ा होने पर वे पुनः साध्वी हो सकती थीं। इसी प्रकार वे साध्वियाँ जो कभी वासना के आवेग में बहकर चारित्रिक स्खलन की शिकार हो जाती थीं, तिरस्कृत नहीं कर दी जाती अपितु उन्हें अपने को सुधारने का अवसर प्रदान किया जाता था।[27]

साध्वियाँ जब भिक्षार्थ गमन करती तो तरुण लोग तरह–तरह के उपसर्ग करते और उनके निवास–स्थान (वसति) में घुस बैठते उनका रक्तस्राव देखकर लोग उनका उपहास करते, कापालिक साधु उन्हें विद्या–प्रयोग द्वारा वश में करने की चेष्टा करते। इसीलिए साध्वियों को आदेश दिया गया है कि केले की भाँति अपने आपको वस्त्र आदि से पूर्णतया सुरक्षित रखें, लेकिन फिर भी तरुण लोग उन्हें सताने से नहीं चूकते थे। ऐसी दशा में साध्वियों को अपनी वसति का द्वार बन्द रखने का विधान किया गया है यदि कदाचित वसति के कपाट न हो तो रक्षा के लिए साधुओं को बैठना चाहिए, या फिर स्वयं साध्वियों को हाथ में डंडा लेकर द्वार पर उपस्थित रहना चाहिए जिससे कि उपद्रवकारी उपद्रव न कर सके। यदि फिर भी विषय लोलुप दुष्ट लोग किसी तरुण साध्वी का पीछा करने से बाज न आए तो कोई सहस्रयोधी तरुण साधु–साध्वी के वेश में उपस्थित होकर उन लोगों को दंड दे।[28]

वाराणसी के राजा जितशत्र की पुत्री सुकुमालिया ने ससअ और भसअ नाम के अपने दो भाइयों के साथ दीक्षा ग्रहण की थी। सुकुमालिया अत्यन्त रूपवती थी। जब वह भिक्षा के लिए जाती तो कुछ मनचले तरुण उसका पीछा करते और उसकी वसति में घुस चले आते। यह देखकर प्रधानगणिनी ने इस बात का आचार्य से निवेदन किया। आचार्य के आदेश से ससअ और भसअ अपनी बहन के साथ उपाश्रय में रहने लगे। यदि एक भिक्षा को जाता तो दूसरा सुकुमालिया की रक्षा करता। दोनों भाई सहस्रमल्ल थे। अतएव यदि कोई उपद्रव करता तो उसे वे ठोंक पीट कर ठीक कर देते।[29]

गृहस्थ लोग साध्वियों को बहलाकर अपने वश मे कर लेते, और उनसे बलात्कार कर बैठते। वे उन्हें देखकर हँसी–मजाक करते और तरह–तरह के गाने गाते। कोई उनकी शक्ल–सूरत की तुलना अपनी साली से और कोई अपनी भानजी से करता। एक बार किसी पुरुष ने किसी रूपवती साध्वी को देखा ; उसका एक मित्र भी उसके साथ था। मित्र की पत्नी की मृत्यु हो गई थी। पुरुष ने अपने मित्र से कहा – ''यह तुम्हारे समान वय की है, इसके साथ तुम्हारा सम्बन्ध हो जाए तो कैसा रहे ?'' उस साध्वी के समक्ष यह प्रस्ताव रखा गया, लेकिन उसने उन दोनों को फटकार कर भगा दिया। एक दिन वह साध्वी संयोग से उस मित्र के घर भिक्षा लेने गयी। मित्र ने धूर्तता वश उसका बड़ा आदर–सत्कार किया। अपनी मृत पत्नी के बाल–बच्चों को उसका चरण–स्पर्श करने को कहा और हमेशा आहार आदि द्वारा उसका आतिथ्य करने का आदेश दिया। स्त्री–स्वभाव के कारण साध्वी उसके फुसलाने में आ गयी, और फिर बार–बार के गमनागमन से दोनों का सम्बन्ध हो गया।[30]

ऐसी परिस्थिति में विधान था कि इस रहस्य को तुरन्त गुरु से निवेदन करना चाहिए। यदि साध्वी गर्भवती हो गई हो तो उसे संघ से बहिष्कृत नहीं करना चाहिए, बल्कि उस दुष्ट व्यक्ति को राजा आदि से कहकर दण्ड दिलवाना चाहिए या स्वयंदण्ड देना चाहिए जिससे कि भविष्य में ऐसी घटना न घटे। यदि वह अज्ञात–गर्भा हो तो किसी श्रावक आदि के घर रख देना चाहिए। यदि कदाचित उसके गर्भ का पता लग गया हो तो उसे उपाश्रय में रखना चाहिए और उसे भिक्षा के लिए न भेजना चाहिए। यदि फिर भी अंगीतार्थ लोग[31] टीका–टिप्पणी करने से बाज न आए तो उनको समझाना चाहिए कि ऐसी संकट की स्थिति में उसका परित्याग कैसे किया जा सकता है ? इन साध्वियों का व्रतभंग इसलिए नहीं माना जाता, क्योंकि उनके परिणाम विशुद्ध थे तथा जैसे उन्मार्गगामी नदी कालान्तर में अपने मार्ग से बहने लगती है, और कंडे की अग्नि

प्रज्वलित होकर कुछ समय बाद शान्त हो जाती है, वैसे ही समझना चाहिए।[32]

साध्वियों का अपहरण भी कर लिया जाता था। कालकाचार्य की साध्वी भगिनी सरस्वती को उज्जैनी में राजा गर्दभिल्ल द्वारा अपहरण कर अपने अन्तःपुर में रखने का उल्लेख मिलता है। भृगुकच्छ के एक बौद्ध वणिक् के सम्बन्ध में कहा है कि कतिपय संयतियों के रूप–लावण्य से आकृष्ट हो, उसने जैन श्रावक बनकर कपटभाव से उन्हें अपने–अपने जहाज में चैत्यवन्दन के लिए आमंत्रित किया लेकिन जैसे ही उन्होंने जहाज में पैर रखा कि जहाज चल पड़ा।[33]

साध्वियों को चोर भी कष्ट पहुँचाते थे। कभी वे बोधिय म्लेच्छों के साथ मिलकर उन्हें उठा ले जाते।[34] कभी वे उनके वस्त्रों का अपहरण कर लेते। ऐसी अवस्था में कहा गया है कि संयतियों को चर्मखण्ड, शाक के पत्ते, दर्भ तथा अपने हाथ द्वारा अपने गुहा प्रदेश की रक्षा करनी चाहिए।

श्वेताम्बर सम्प्रदाय की इस उदारवादी दृष्टि के बावजूद भी उनके आगमों में स्त्री–दोष को बताया गया है। स्त्रियों को पंक के समान बताया गया है और कहा गया है कि जिस प्रकार पंक प्राणी को अपने में फँसा लेता है उसी प्रकार स्त्रियां पुरूष को विषय वासनाओं के पंक में फँसा लेती हैं।[35] स्त्रियों के सम्बन्ध में यह भी उल्लेख मिलता है कि वे पुरूष को प्रलोभन में फँसाकर खरीदे हुए दास की भाँति नचाने वाली है।[36] स्त्रियों को पुरूष का ब्रह्मचर्य नष्ट करने वाला कहा गया है।[37]

साधु के लिए इस संसार में साध्वी को अतिरिक्त और कोई बन्धन नहीं है। जिस प्रकार श्लेष्म में पड़ी हुई मक्षिका अपने आपको नहीं छुड़ा सकती, उसी प्रकार स्त्री के बन्धन में फँसा हुआ साधु संसार–सागर से पार नहीं पा सकता।[38] वे भिक्षुओं के ब्रह्मचर्य को स्खलित करने का साधन मानी गयीं।

जैन सूत्रों में ऐसी कितनी ही परिव्राजिकाओं का उल्लेख है जो प्रेम संदेश ले जाने का काम करती थीं। मिथिला की चोक्खा परिव्राजिका चार वेद तथा अन्य शास्त्रों की पण्डिता थीं और वह अनेक राजा, राजकुमार आदि को दानधर्म, शौचधर्म और तीर्थाभिषेक का उपदेश करती हुई विहार किया करती थी। एक दिन वह त्रिदण्ड, कुण्डिका आदि लेकर परिव्राजिकाओं के मठ से निकली तथा अनेक परिव्राजिकाओं के साथ राजा कुम्भक के अन्तःपुर की ओर चली। वहाँ पहुँचकर वह मल्लीकुमारी के पास आयी। जल से सिंचित दर्भ के आसन पर वह बैठ गयी, और दान–धर्म का उपदेश देने लगी। उसने बताया कि जो कोई पदार्थ अशुचि हो वह मिट्टी और जल से साफ करने से शुद्ध हो जाता है। इस समय मल्लीकुमारी ने चोक्खा से कोई प्रश्न किया और उसका उत्तर न देने के कारण उसे अपमानित कर उसे वहाँ से भगा दिया। वहाँ से चोक्खा पांचाल देश के राजा जितशत्रु के अन्तःपुर में पहुँची और वहाँ मल्ली के रूप लावण्य का बखानकर राजा को उसे प्राप्त करने के लिए उकसाया।[39]

बुद्धिल की कन्या रयणावई राजकुमार ब्रह्मदत्त को देखकर उसकी ओर आकृष्ट हुई। किसी परिव्राजिका के हाथ उसने राजकुमार के नाम एक पत्र भेजा। उसने राजकुमार के मित्र वरधणु के पास पहुँचकर उसके सिर पर अक्षत और पुष्प फेंककर, उसे सहस्त्र वर्ष जीवित रहने का आशीर्वाद दिया, और उसे एकान्त में ले जाकर रयणावई की इच्छा व्यक्त की। ब्रह्मदत्त ने रयणावई के पत्र का उत्तर दिया और उसे लेकर परिव्राजिका वापस आई।

पुरूष भी परिव्राजिकाओं द्वारा प्रेम का संदेश भिजवाते थे। कोई युवती नदी पर स्नान करने गई हुई थी। एक युवक उसे देखकर मुग्ध हो गया। पहले तो उसने बालकों को फल आदि देकर उसके घर का पता लगाया, और फिर एक परिव्राजिका को उसके घर भेजा। परिव्राजिका जब युवती के घर पहुँची तो वह बर्तन धो रही थी। परिव्राजिका की बात सुनकर उसे गुस्सा आया और बर्तन धोते–धाते उसने स्याही लगे हुए अपने हाथों से उसकी कमर पर एक जोर का थप्पड़ मारकर उसे भगा दिया।[40]

कभी स्त्रियां अपने पति को प्रसन्न करने के लिए अथवा पुत्रोत्पत्ति के लिए भी परिव्राजिकाओं की शरण लेती थी। तेयलीपुत्र आमात्य की पत्नी पोट्टिला अपने पति को इष्ट नहीं थी। वह विपुल अशन, पान आदि द्वारा श्रमण, ब्राह्मण आदि का सत्कार करके अपना जीवन यापन करती थी। एक दिन सुब्रता नाम की आर्यिका वहाँ आयी। पोट्टिला ने भिक्षा देकर उसका सत्कार किया। तत्पश्चात् उसने निवेदन किया – ''आप बहुत अनुभवी हैं, बहुश्रुत हैं, दूर–दूर भ्रमण करती हैं। कोई ऐसा उपाय बताइये जिससे मेरे पतिदेव मुझसे प्रसन्न रहने लगें। यदि आपके पास कोई चूर्ण, मन्त्र, गुटिका, औषधि आदि हो जिससे कि मेरे पति आकृष्ट हो सकें, तो दीजिए, यह सुनकर सुब्रता ने अपने कानों पर हाथ रखे और वहाँ से चलती बनी।[41]

किसी परिव्राजिका ने एक स्त्री को अपने पति को वश में करने के लिए अभिमंत्रित क्रूर (चावल) खाने के लिए दिया। स्त्री ने सोचा कि कहीं इसके खाने से मेरे पति की मृत्यु न हो जाये। यह सोचकर उसने उस क्रूर को एक कूड़ी पर फिंकवा दिया। संयोग से उसे एक गधे ने खा लिया और वह रात भर उस स्त्री के द्वार पर टक्कर मारता रहा।[42]

इससे स्पष्ट है कि साध्वियां कुछ दौत्य कर्म भी करती थीं। यद्यपि नारी जाति की निन्दा साधुओं के ब्रह्मचर्य को सुरक्षित रखने के लिए की गई थी, परन्तु इससे साध्वियों की सामाजिक स्थिति पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था।

दिगम्बर सम्प्रदाय में तो स्त्रियो को परिव्रज्या ग्रहण करने के लिए अयोग्य ही बताया गया है। दिगम्बर सम्प्रदाय के मानने वाले लोगों के मतानुसार स्त्रियों की सामाजिक स्थिति और शारीरिक बनावट ऐसी होती है जिसके कारण वह मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकतीं। दिगम्बर मतानुयायी मानते हैं स्त्रियों की शारीरिक बनावट ऐसी होती है कि उससे रक्तस्राव होता है, उस पर बलात्कार की सम्भावना रहती है जिससे वह नग्न नहीं रह सकती। अपने चंचल स्वभाव के कारण स्त्रियां ध्यान नहीं कर सकती। वह ध्यान में स्थिरता नहीं रख पातीं। स्त्रियां सामाजिक बन्धनों से युक्त होती हैं। स्त्रियां सांसारिक मोह में फँसी रहती हैं वह मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकतीं। संघ में आर्यिकाओं के होने से मुनि के चित्त की चंचल होने की सम्भावना थी। आर्यिकाओं को अपनी शील सुरक्षा का भय बना रहता था।

उपरोक्त विवरण के आधार पर कह सकते हैं कि बौद्ध संघ एवं जैन संघ में भिक्षुणी एवं साध्वी एवं आर्यिका की स्थिति भिक्षु एवं मुनि से निम्न थीं। फिर भी बौद्ध एवं जैन दोनों ही संघों में उनकी शील सुरक्षा का ध्यान रखा जाता था। यद्यपि उन्हें सामाजिक बुराइयों का सामना करना पड़ता था फिर भी उन्होंने संघ में प्रवेश पाकर उच्च स्थान प्राप्त कर लिया था।

भिक्षुणियां एवं साध्वियां एवं आर्यिकायें सामाजिक बन्धनों से दुःखी होकर ही वैराग्य की ओर प्रेरित होती थीं अपने जीवन की कठिनाइयों से मुक्त होने के लिए बौद्ध एवं जैन संघों में स्त्रियां मोक्ष प्राप्त करने के लिए इच्छुक होती थीं। भिक्षुणियों एवं साध्वियों एवं आर्यिकाओं का स्थान समाज में भिक्षुओं एवं मुनियों की अपेक्षा निम्न था लेकिन कहीं–कहीं भिक्षुणियां एवं साध्वियां अपनी विद्वता के कारण भिक्षु एवं साधु एवं मुनि को हतोत्साहित कर देती थीं। बौद्ध एवं जैन संघ में स्त्रियों को प्रवेश दिया जाता था परन्तु उन्हें पुरूषों के संरक्षण में रहना पड़ता था। यद्यपि भिक्षुणियां एवं साध्वियां

समाज में सम्मानजनक स्थान पा लेती थीं लेकिर फिर भी उनको हीन भावना से देखा जाता था उनके साथ दुर्व्यवहार किया जाता था इसलिए भिक्षुणियों एवं साध्वियों एवं आर्यिकाओं को भिक्षु एवं साधु एवं मुनि के संरक्षण में रहना पड़ता था। और उनकी आज्ञा के अनुसार कार्य करना पड़ता था। इससे ज्ञात होता है कि भिक्षुणियों एवं साध्वियों एवं आर्यिकाओं को संघ में रहकर नियमों के अनुसार कार्य करना पड़ता था। स्त्रियां अपने सांसारिक जीवन के कष्टों से मुक्त होने के कारण संघ में प्रवेश लेती थीं। संघ में उनका जीवन सादा और सरल था। कुछ प्रव्रजित स्त्रियां बुरे कर्म भी करती थीं जिससे उनको हीन भावना से देखा जाता था। समाज में पुरूष का स्थान उच्च था इसलिए संघ में भिक्षुणी एवं साध्वी एवं आर्यिका की स्थिति भिक्षु एवं साधु एवं मुनि से निम्न थी।

संदर्भ

1. सिंह मदन मोहन बुद्धकालीन समाज और धर्म पृ. 186।
2. चुल्लवग्ग, 10/1/6 ; अंगुत्तर निकाय, 4 पृ. 278।
3. महावग्ग, 1/60।
4. धर्मशास्त्र या सिंह, मदन मोहन बुद्ध कालीन समाज और धर्म, पृ0 188।
5. विनयपिटक, हि. अ. – पृ. 537।
6. वही, पृ. 540।
7. भिक्खुनी–पातिमोक्ख–संघादिसेसे धम्म।
8. सिंह मदनमोहन, बुद्धकालीन समाज और धर्म पृ. 189।
9. थेरीगाथा (हि0 अ0) पृ. 40 ; (गाथा सं. 40)।
10. जातक 6 पृ. 35।
11. थेरी गाथा (हि. अ.) पृ. 62 ; गाथा सं. 63।
12. वही पृ. 33–35 गाथा सं. 46।
13. डफाल कमल– बौद्ध वाङ्मय ने नारी, पृ. 62।
14. थेरीगाथा, (हि. अ.) पृ. 26 ; गाथा सं. 39।
15. वही पृ. 11 गाथा सं. 22।
16. हार्नर आई बी, वीमेन अण्डर प्रिमिटिव बुद्धिज्म, पृ. 167।
17. डफाल कमल, बौद्ध वाङ्मय में नारी, पृ. 62।
18. सिंह मदन मोहन, बुद्धकालीन समाज और धर्म पृ. 190।
19. सिंह मदन मोहन, बुद्धकालीन समाज और धर्म – पृ. 190।
20. जैन, प्रदीप कुमार, भारतीय संस्कृति – पृ. 72।
21. भिक्खुणी संयुत्त, सुत्त 2।
22. कोसम्बी धर्मानन्द, भगवान बुद्ध जीवन और दर्शन – पृ0 159।
23. जैन, कोमल चन्द्र, बौद्ध और जैन आगमों में नारी जीवन – पृ. 182।
24. जैन, कोमल चन्द्र, बौद्ध और जैन आगमों में नारी जीवन, पृ. 183।
25. जैन जगदीश चन्द्र, जैन आगम साहित्य में भारतीय समाज पृ. 280।
26. जैन सागरमल, जैन धर्म में नारी की भूमिका – पृ. 41।
27. वही।
28. वृहत्कल्पभाष्य 3.4106 आदि ; 1–2443 आदि, 2085।
29. वही, 4, 5254–59।
30. बृहत्कल्पभाष्य, 1,2669–72।
31. जैन, जगदीश चन्द्र, जैन आगम साहित्य में भारतीय समाज – पृ. 28।
32. बृहत्कल्पभाष्य, 3–4147।
33. बृहत्कल्पभाष्य, 1.2054।
34. व्यवहारभाष्य 7.419।
35. ''पंकभूया–इत्थियो'' – उत्तराध्ययन, 2/17।
36. वही, 8/18।
37. सूत्रकृतांग, 1/4/1/26।
38. गच्छाचार, 67।
39. जैन जगदीशचन्द्र, जैन आगम साहित्य में भारतीय समाज पृ. 283।
40. वही पृ. 284।
41. जैन जगदीश चन्द्र जैन, आगम साहित्य में भारतीय समाज पृ. 284।
42. वही पृ. 285।